वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष १२, गुरुवार

दि.१७-२-१९६६, गाथा ८, प्रवचन नं.-२८

यह 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है, उसमें चौथी ढाल चलती है। चौथी ढाल की आठवीं गाथा है, आठवीं। देखो ! क्या कहते हैं ? '**सम्यग्ज्ञान की महिमा और विषयेच्छा रोकने का उपाय।**' थोड़ा चला है, फिर से लेते हैं।

जे पूरव शिव गये, जाहिं, अरु आगे जैहैं;
सो सब महिमा ज्ञान-तनी,मुनिनाथ कहैं हैं।
विषय-चाह दव-दाह,जगत-जन अरनि दझावै;
तास उपाय न आन, ज्ञान-घनघान बुझावै।।८।।

देखो ! सादी सरल भाषा में 'छहढाला' में यहाँ चौथी ढाल में आठवीं गाथा (में) क्या कहते हैं ? '**जे पूरव शिव गये,...**' जो आज से पहले मुक्ति को अनन्त आत्मा प्राप्त हुए हैं... समझ में आया ? अनन्त काल में छह महीने और आठ समय में ६०८ (जीव) मुक्ति को प्राप्त होते हैं। अनन्तकाल में अनन्त काल बीता, उसमें छह महीने और आठ समय में ६०८ मुक्ति को प्राप्त होते हैं। अभी तक जितने मुक्ति को-शिवपद को प्राप्त हुए वह सब ज्ञान की महिमा है। कहा ना ?

'**सो सब महिमा ज्ञानतनी,...**' है उसमें ? उसका अर्थ करते हैं। शब्दार्थ है न ? '**पूर्वकाल में जो जीव मोक्ष में गये हैं, वर्तमान में जा रहे हैं...**' वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में 'सीमंधर' परमात्मा तीर्थंकर बिराजमान हैं और लाखों केवलज्ञानी भी वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में मोजूद हैं। उसमें ... वर्तमान में भी छह महीने और आठ समय में ६०८ वर्तमान में मुक्ति को प्राप्त हैं। महाविदेहक्षेत्र में। यहाँ भरत, ऐरावत में अभी केवलज्ञान की

प्राप्ति का इतना पुरुषार्थ नहीं है। महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान में जो मुक्ति प्राप्त करते हैं, वह भी ज्ञानतनी महिमा है।

'**और (आगे) भविष्य में जायेंगे...**' भविष्य में अनन्त अनन्त काल छह महिने आठ समय में ६०८ मुक्ति को जो प्राप्त होंगे... क्या कहते हैं ? देखो ! '**यह सब सम्यग्ज्ञान की महिमा है...**' है उसमें ? भैया ! सम्यग्ज्ञान क्या ? वह बात पहले उपर में आ गई। स्व-पर का विवेक करना। उपर में सातवें में आ गया, सातवाँ श्लोक है न ? उसमें आ गया है, देखो !

तास ज्ञानको कारन, स्व-पर विवेक बखानौ;
कोटि उपायबनाय भव्य,ताको उर आनौ।।

सातवे श्लोक में पहले आ गया। क्या कहते हैं ? सम्यग्ज्ञान से अनन्त जीव मुक्ति को पाये, वर्तमान पाते हैं, अनन्त पायेंगे। सम्यग्ज्ञान का अर्थ क्या ? कि, अपना आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और देह, वाणी, जड़ अजीव हैं और अपनी पर्याय अर्थात् अवस्था में शुभ और अशुभ जो राग होता है वह विकार है। इस विकार से मेरी चीज़ भिन्न है और कर्म और शरीर अजीव से मेरी चीज़ भिन्न है - ऐसा स्वस्वभाव और पुण्य-पाप का विभाव और जड़ की सामर्थ्य की पृथकता, उसका अन्तर में भेदज्ञान करना। समझ में आया ? यह तो सादी भाषा में बात करते हैं, देखो ! हिन्दी,सादी हिन्दी है।

स्व-पर का विवेक करना। मैं आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध हूँ, मेरे स्वरूप में तो अनन्त ज्ञान, शांति आदि का सामर्थ्य पड़ा है और मेरे स्वभाव के पूर्ण सामर्थ्य के आगे पुण्य-पाप के भाव होते हैं वे विभाव, विकार, विपरीत भाव हैं। समझ में आया ? और शरीर, कर्म और अजीव पदार्थ हैं, वे मेरे से पृथक हैं। जड़ की पृथक्ता, विभाव की विपरीतता और स्वभाव की सामर्थ्यता - तीन बोल कहे। क्या कहा ? अपने पहले बहुत बार बात आ गई है।

यह भेदज्ञान की बात करते हैं। 'दौलतरामजी' जगत को सर्वज्ञ परमात्मा ने जो कहा, उसका थोड़ा सार ले लेकर, गागर में सागर जैसे भर देते हैं, ऐसे भर दिया है। कहते हैं कि, अरे..! भैया ! अनन्तकाल में जितने आत्मा मुक्ति को प्राप्त हुए, वर्तमान में प्राप्त करते हैं और

प्राप्त करेंगे, वे सब भेदज्ञान से (प्राप्त करेंगे)। भेदज्ञान का अर्थ क्या ? अपना आत्मा अनन्त अनन्त स्वभाव के सामर्थ्यरूप आत्मा है। मैं तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शांति, वीर्य - ऐसा मेरा स्वरूप है। शुभ और अशुभ, पुण्य-पाप (के) जो भाव होते हैं, वे विभाव हैं। समझ में आया ? वे विकार हैं। आत्मा का स्वभाव बेहद आनन्द के आगे वह विभाव, स्वभाव से विपरीत है। समझ में आया ? वह कहा न ?

'**सो सब महिमा ज्ञान-तनी, मुनिनाथ कहैं हैं।**' मुनिनाथ-तीर्थंकरदेव जिनेन्द्र परमेश्वर, अनन्त वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर हुए, वर्तमान में भगवान जिनेन्द्र बिराजमान हैं, भविष्य में अनन्त तीर्थंकर होंगे। संवर किसको कहते हैं ? कि, पुण्य-पाप का जो राग उत्पन्न होता है, उससे अपना स्वभाव भिन्न करके स्वभाव में एकाग्रता का होना, उसका नाम भगवान संवर कहते हैं। आहा..हा... !'**सो सब महिमा ज्ञान-तनी,...**' उसका अर्थ क्या ? सातवीं (गाथा में) लिया - स्व-पर विवेक। समझ में आया ? मैं आत्मा... यह समझे बिना उसे कभी मुक्ति होती नहीं। यह समझे बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। यहाँ सम्यग्ज्ञान कहा है, लेकिन आगे-पीछे दोनों लेना. सम्यग्ज्ञान कहेत हैं (लेकिन) सम्यग्दर्शन पहले साथ में है। सम्यग्ज्ञान कहते हैं, तब साथ में राग से पृथक् स्थिरता भी है। नीचे कहा है ना ? देखो न ! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र तीनों लिखे हैं। नीचे...क्या कहते हैं ? चित्र...चित्र !

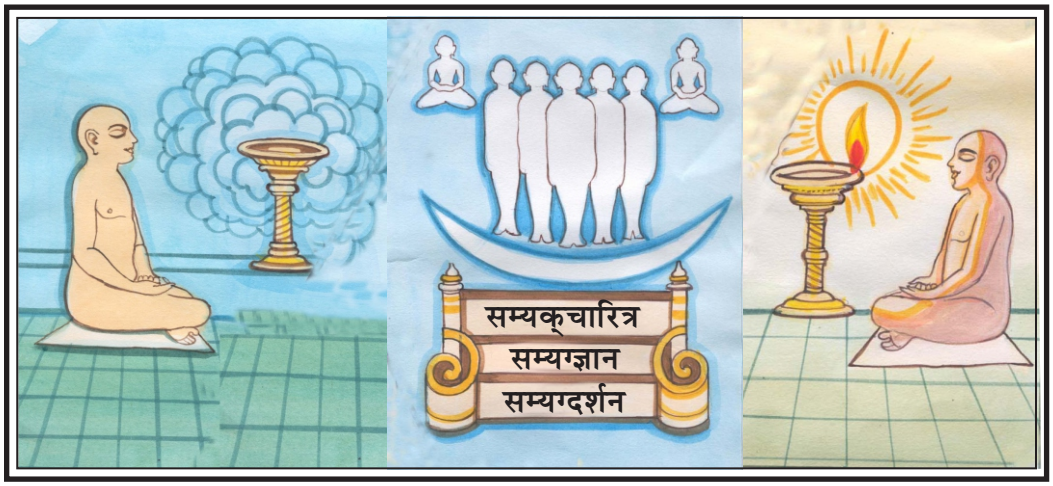

कहते हैं कि, भैया ! यदि मुझे मुक्ति प्राप्त करनी है अथवा धर्म करना है अथवा तुझे संवर और निर्जरा प्राप्त करनी है तो पहले यह करना। वह कल आया था, कहा था। '**भेदज्ञान संवर जिन्ह पायौ, भेदज्ञान संवर जिन्ह पायौ...**' 'बनारसीदास' 'समयसार नाटक' में कहते हैं।

(अढाई द्वाप के बाहर) असंख्य पशु हैं। मनुष्यक्षेत्र अढाई द्वीप में है, उससे बाहर के क्षेत्र में असंख्य समुद्र, द्वीप हैं। अन्तिम के स्वयंभूरमण समुद्र में भी असंख्य पशु सम्यग्ज्ञानी हैं। अभी (हैं)। इस सम्यग्ज्ञान का अर्थ क्या ? '**भेदज्ञान संवर जिन्ह पायौ, सो चेतन सिवरूप कहायौ।**' राग, विकल्प पुण्य-पाप का वकिल्प उठता है, वह विभाव (है)। शरीर, कर्म आदि अजीव जड़ (हैं)। उसकी क्रिया जड़, उसकी पर्याय जड़ (है)। और मेरा स्वभाव शुद्ध अनन्त ज्ञानादि का सामर्थ्य (स्वरूप है), मैं चैतन्यमूर्ति (हूँ) - ऐसे स्वभावकी अनन्त सामर्थ्य का भान, पुण्य-पाप का, विभाव का स्वभाव से विपरीतपना है - ऐसा अन्तर बोध (होना) और देहादि जड़ की अपने स्वभाव से विभाव की पृथकता (होनी) समझ में आया ?

ये तो सात तत्त्व के अन्दर है। 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' अजीव और जीव दोनों भिन्न हैं और पुण्य-पाप का आस्रव और आत्मा का संवर - स्वभावसन्मुख होना वह भिन्न है। ऐसा अन्दर में सम्यग्ज्ञान किया, वही सम्यग्ज्ञानी ने संवर को पाया और वे ही मुक्ति को पाते हैं, दूसरे कोई प्राणी मुक्ति को पाते नहीं। यह तो सादी भाषा है। गहन तो है न।

भेदग्यान संवर जिन्ह पायौ
सो चेतन सिवरूप कहायौ।
भेदग्यान जिन्हके घट नांही
ते जड़ जीव बंधैं घट मांही।

जिसके घट में आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप आनन्द की मूर्ति मैं हूँ और विकार - परभाव होता है, वह बन्ध का कारण है और जड़ आदि परवस्तु है, ऐसा जिसकेअन्तर में भेदज्ञानरूपी सम्यग्ज्ञान नहीं (है तो) कहते हैं कि, वह जड़ जीव (है)। वह तो जड़ जीव है। आहा..हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- जड़ जीव यानी ?

उत्तर :- जड़ जीव का अर्थ भान रहित जीव।

पहले ऐसे कहा कि, '**भेदग्यान संवर जिन्ह पायौ, सो चेतन सिवरूप कहायौ।**' दूसरे में ऐसा कहा, '**भेदग्यान जिन्हके घट नांही, ते जड़ जीव बंधै घट मांही।**' समझ में आया ? एक ... और एक जड़। आत्मा, राग और पुण्य-पाप का भाव होता है, हो, परन्तु उससे मेरी चीज अन्दर में भिन्न आनन्दकन्द ज्ञायक चैतन्यमूर्ति हूँ। ऐसा भेदज्ञान अन्तर में न किया तो कहते हैं कि, जड़ है। राग को और जड़ को अपना मानना, वही जड़ है। वह जग में भटकता है। आहा..हा... ! ये तो साधारण सादी भाषा में कहते हैं तो लोग कहते हैं, ये नहीं, ये नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। क्या ऐसा नहीं ? तुझे क्या करना है ? समझ में आया ?

अनन्त काल से परिभ्रमण करता है। बाद में नववीं (गाथा में) कहेंगे, '**पुण्य-पाप-फलमाहि, हरख बिलखौ मत भाई;**' पुण्य और पाप ये दो तो विकार हैं। विकार के बंधन में जड़ का बंधन होता है, उसके फल में यह धूल आदि बाहर में संयोग मिलते हैं। समझ में आया ? कहते हैं, जितने प्राणी अभी तक मुक्ति को प्राप्त हुए और पायेगे, सब सम्यग्ज्ञान की महिमा (है - ऐसा) सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं। त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर आदि गणधरो, मुनिनाथ ऐसा कहते हैं कि, है मुक्ति पाने का उपाय सब सम्यग्ज्ञान की महिमा है। इस सम्यग्ज्ञान का अर्थ-स्व-पर का भेद। स्व-पर का भेद का अर्थ-पुण्य-पाप का विभाव और त्रिकाल स्वभाव दोनों को अन्दर भिन्न करना। आहा..हा... ! वह पहले आ गया है। प्रत्येक आत्मार्थी भव्य जीव को... सातवीं (गाथा में) आ गया न ? देखो ! क्या कहा ? '**तास ज्ञान को कारन, स्व-पर विवेक बखानौ;**' सातवीं गाथा में आ गया। '**कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनौ।**' है उसमें ? भैया ! सातवे श्लोक में है। आहा..हा... ! दुनिया को परवाह नहीं प्रवृत्ति की आड में निवृत्ति नहीं है। क्या चीज़ है ? मरी अन्तर चीज़ क्या है ? और यह विकार क्या होता है ? शरीर आदि जड़ की पर्याय जड़ से क्या होती है ? (उसके) भेद का कोई पता नहीं। सब एक मानकर अनादि अज्ञानी मिथ्यादृष्टि पर को एक मानकर चार गति में भटकता है।

भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर सर्वज्ञदेव का फरमान समवसरण में मुनिनाथ ऐसा कहते

हैं। 'दौलतरामजी' भी अपना नहीं कहते हैं। मुनिनाथ ऐसा कहते हैं। तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परेश्वर सो इन्द्र से पूजनीक समवसरण में भगवान फरमाते थे कि, सम्यग्ज्ञान समान कोई (महिमावंत) है नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो ऐसा मानता है, कि देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ। वह तो जड़ है। जड़ की पर्याय तो जड़ से होती है। जड़ की पर्याय है। पर्याय समझे ? जड़ में तीन बोल हैं - द्रव्य, गुण और पर्याय जड़ पदार्थ है यह वस्तु (है)। उसमें गुण हैं-वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुण (हैं) और उसकी ऐसी हालत-रूपांतर होती है वह उसकी पर्याय (है)। जड़ में द्रव्य-गुण-पर्याय जड़ से होते हैं और अज्ञानी माने कि मेरे से होता है तो जड़ को अपना माना। पहले आ गया है न ? तन उपजत मैं उपजा, तन नाशत मेरा नाश हुआ। वह जड़ को अपना मानते हैं। बहुत अच्छा लिया है।

'छहढाला' में बहुत थोड़े में भर दिया (है), परन्तु विवेचन नहीं,समझ नहीं, विचार नहीं, मनन नहीं। कल भैया कहते थे, थोड़ा पढ़ लेते हैं। पढ़े लेकिन मनन कुछ नहीं। थोड़ा स्वाध्याय करना है। दो पन्ने पढ़ लो। बस ! लेकिन क्या पढ़ते हो ? उसमें किया क्या ? उसमें भाव क्या है ? (उसका) भाव समझे बिना भावभासन हुए बिना का वांचन, मनन सब निरर्थक है। 'टोडरमलजी' 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में कहते हैं न ? भावभासन होना चाहिए। भाव का अन्दर ख्याल होनाचाहिए कि, यह आत्मा भगवान परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि, सम्यग्ज्ञान की महिमा से आत्मा मुक्त होता है, तो सम्यग्ज्ञान क्या ?

मैं आत्मा अन्तर ज्ञान की ज्योत चैतन्यसूर्य पड़ा हूँ और ये पुण्य-पाप का विकार, विभाव है, वह बन्ध का कारण है। मेरे स्वभाव से विभाव विपरीत है और कर्म, शरीरादि है, वे मेरे पृथक हैं। स्वभाव की सामर्थ्यता का भान, विभाव की विपरीतता का भान और जड़ की पृथकता का भान। समझ में आया ? आहा..हा... ! ... शरीर चलता है ? आत्मा बहुत प्रेरणा करे लेकिन चलता नहीं। शरीर जड़ है। पक्षघात होता है तब नहीं चलता। वह जड़ है। जड़ की अवस्था आत्मा से नहीं होती, पृथक है। पृथक पदार्थ की क्रिया पृथक में, अपने से पृथक में उसमें होती है, अपने से नहीं, अपने में नहीं। शरीर, वाणी की क्रिया अपने से नहीं, अपने में नहीं। आहा..हा... !

पुण्य-पाप का भाव, विभाव अपने स्वभाव में नहीं और अपने स्वभाव से विभाव उत्पन्न हुआ नहीं। समझ में आया ? आहा..! विकार जो उत्पन्न होता है, वह अंश में अन्दर योग्यता से, वर्तमान अंश की योग्यता की पुण्य-पाप का वकिार (उत्पन्न होता है)। दया, दान, व्रत,भक्ति का परिणाम पुण्य है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग का भाव पाप है। दोनों विभाव हैं। वह कहते हैं। आहा..हा...! विभाव, आत्मा में एक समय की योग्यता की विपरीतता से उत्पन्न होता है। स्वभाव में अविपरीतता त्रिकाल आनन्दकन्द ज्ञायक पड़ा है। ऐसा विपरीत और अविपरीत दो का भेदज्ञान करना और जड़ शरीर की पृथकता का ज्ञान अन्तर में लाना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान, भेदज्ञान, शिवमार्ग का उपाय भगवान फरमाते हैं। आहा..हा...! कहा ? (ऐसा) महिमा मुनिनाथ ने कहा है। **'जिनेन्द्रदेव ने कहा है।'** देखो ! उसमें लिखा है। यहाँ तक तो कल चला था।

'पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छा रूपी भयंकर दावानल...' क्या कहते हैं ? विषय में सुख मान रखा है। पाँच इन्द्रिय विषयों में सुख मान रखा है, वह मिथ्या भ्रम है। ये इन्द्रिय तो जड़ हैं, विषय पर हैं और अन्दर में भावइन्द्रिय खंड खंड से लक्ष्य करके, शब्द में, रूप में, रस में, गंध में, शरीर के स्पर्श में मुझे ठीक है, मुझे सुख होता है - ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। समझ में आया ? उन विषयों के सुख की इच्छा में सुख माना है वह मिथ्या भ्रम है। इस विषयसुख की इच्छा को सम्यग्ज्ञान नाश कर सकता है। समझ में आया ? क्यों ? विषय की इच्छा, इन्द्र का भोग, राज का भोग, शेठाई का भोग, ये सब इच्छा होती हैं सब दुःखरूप है। मानता है कि, हमें विषय में सुख का मजा आता है। मूढ है, मिथ्यादृष्टि है, उसे सम्यग्ज्ञान है नहीं। विषय में सुख मानना; सुख नहीं है, उसमें (सुख) मानना, उसका नाम मिथ्यात्वभाव, अज्ञानभाव है। इस मिथ्यात्वभाव का नाश सम्यग्ज्ञान से होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? कहा ना ?

'पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी भयंकर दावानल संसारी जीवों रूपी अरण्य-पुराने वन को...' पुराना वन। क्या कहते हैं ? आहा..हा...! एक श्लोक में दो बात कही। एक तो अपना सम्यग्ज्ञान, विभाव पर से भिन्न, उसमें विषय की चाह, उसमें सुख मानना, उससे भी सम्यग्ज्ञान में भिन्न हो गया। समझ में आया ? विषय की दाह-चाह जो है, सुखरूप मान्यता

(जो है) वह अज्ञान में है। ज्ञान हुआ कि, ओ..हो... ! मैं तो आत्मा आनन्द हूँ, आनन्द मेरे में है; आनन्द विषयो में नहीं। विषयो में आनन्द नहीं, भोग में आनन्द नहीं, इज्जत में आनन्द नहीं, लक्ष्मी में आनन्द नहीं, पर में आनन्द मानना, उसका नाम भगवान मिथ्यादृष्टि अज्ञान कहते हैं। इस मिथ्यादृष्टिपने (में) जो विषय में सुखबुद्धि है, वह सम्यग्ज्ञान से ही नाश होती है। समझ में आया ? आहा..हा... !

'**विषय-चाह दव-दाह**' दावानल जला, दावानल। थोडी अनुकूलता देखे, जैसे पतंगा गिरता है, पतंगा... पतंगा दीपक देखकर पतंगा गिरता है, वैसे यहाँ 'दौलतरामजी' कहते हैं कि, अज्ञानी पाँच इन्द्रिय विषयों की लालच करके अज्ञानी सुखबुद्धि (मानकर) अन्दर गिरता है। सम्यग्दृष्टि उसको नाश करते हैं। ओ..हो... ! पाँच इन्द्रिय के विषय में राग (होता है) उसमें सुख नहीं है। सम्यग्दृष्टि को राग होता है, समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को राग होता है। स्त्री के भोग में थोड़ा राग है, सुखबुद्धि नहीं है। यह कहते हैं, सुखबुद्धि नहीं। सम्यग्ज्ञानी को विषयचाह में सुखबुद्धि नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ यह कहते हैं, '**विषय-चाह दव-दाह**' आत्मा के आनन्द के भान बिना, आत्मा में आनन्द है, सुख है ऐसी दृष्टि और ज्ञान बिना विषय-चाह दाह, जलन-दावानल अन्दर में जलता है। ऐसा करूँ, ऐसा करुँ, ऐसा करुँ... ऐसी विषय-चाह की दाह (है)। समझ में आया ? '**पुराने वन...**' अनादि की विषयभोग की चाहना पड़ी है वह सम्यग्ज्ञान द्वारा नाश हो जाती है। क्या कहा ? समझ में आया ? '**जला रहा है, उसकी शान्ति का उपाय दूसरा नहीं है; (मात्र) (ज्ञान-धनधान) ज्ञानरूपी वर्षा का समूह शांत करता है।**' उसका क्या अर्थ हुआ ? कि, विषयभोग की वांछा में जो सुखबुद्धि अनादि की है, (वह सम्यग्ज्ञान से ही शांत होती है)।

समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि अज्ञानी अनादिकाल में विषयचाह में सुखबुद्धि (रखता है) और मुझे मजा आता है – ऐसा मानता है, वह मूढ जीव है। वह मूढता, विषय की चाह में सुख मानना वह भेदज्ञान से शांति होती है। समझ में आया ? आहा..हा... ! भाई ! आहा..हा... !

भगवान आत्मा इच्छा, राग से मेरी चीज़ भिन्न है – ऐसा आनन्दरूपी अपना ज्ञान करके इच्छा का दाह जो दावानल है, उसे सम्यग्ज्ञानी बुझाते हैं। इच्छा में सुख नहीं, भोग में सुख नहीं, इज्जत में सुख नहीं, पर में सुख नहीं। पर में सुख नहींहै, ऐसी बुद्धि सम्यग्ज्ञानी को सम्यग्ज्ञान से पर में सुखबुद्धि (रूप) अज्ञान को नाश कर देती है। बुझाता है, ऐसा कहा न ? '**ज्ञानरूपी वर्षा का समूह**...' ज्ञान की व्याख्या, ज्ञान की व्याख्या क्या ? विकार, विकल्प है उससे मेरी चीज़ भिन्न है। मेरे में आनन्द है। मेरे में आनन्द है, (ऐसा) सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में मानते हैं। समझ में आया ?

चौथे गुणस्थान में अभी अविरत सम्यग्दृष्टि हो, त्याग न हो, ९६ हजार स्त्री हो, इन्द्रों को इन्द्राणी है, पहले देवलोक में शक्रेन्द्र है। इन्द्र और इन्द्राणी दोनों एकावतारी है, एकभवतारी (हैं)। समझ में आया ? स्वर्ग में इन्द्र है न ? शक्रेन्द्र और उसकी शचि (इन्द्राणी), दोनों एकभवतारी हैं। वहाँ से एक भव (करके) दोनों मोक्ष जानेवाले हैं। वहाँ दोनों में विषय की इच्छा का प्रेम नहीं है। आहा... ! अज्ञानी को थोड़ा भी राग है, भोग की इच्छा (है उसमें) अज्ञान के कारण मीठास, मीठास, प्रेम है – ऐसा बताते हैं। सम्यग्ज्ञान राग और अशुद्ध पुण्य-पाप के भाव से मेरा स्वरूप भिन्न है – ऐसा सम्यग्ज्ञान किया, यह सम्यग्ज्ञान विषयचाह की दाह को शांत करता है। समझ में आया ?

अपना स्मयग्ज्ञान करने से मेरे में आनन्द है – ऐसा भान होकर विषयचाह के दावानल

को शांत कर देता है। तीनकाल में (विषय में) सुख नहीं है। मेरे आत्मा के अलावा सुख तीनकाल में कहीं नहीं है। भोग में, विषय में, इज्जत में, कीर्ति में, महन्त में, बड़े अधिकारी में (सुख नहीं)। समझ में आया ? देखो ! इतना कहते हैं, थोड़े में बहुत भर दिया है।

जे पूरव शिव गये, जाहिं, अरु आगे जैहैं;
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहैं हैं।
विषय-चाह दव-दाह, जगत-जन अरनि दझावै;

आहा..हा... ! पुराने वन को जला रहा है। ...रूपी वन। अन्दर शान्ति...शान्ति... भगवान आत्मा अपनी श्रद्धा-ज्ञान करके, रागरहित अपनी शान्ति होती है, इस शान्ति को, इच्छा में दाह, सुख है, पर में मज़ा है, ऐसी अग्नि बुझा देती है, शांति को बुझा देती है (और) सम्यग्ज्ञान अग्नि को बुझा देता है। आहा..हा... !

मुमुक्षु :- सम्यग्दृष्टि को दव तो नहीं है।

उत्तर :- दव भी नहीं है, थोडी अस्थिरता है। उसका प्रेम नहीं, उसका ज्ञाता-दृष्टा है। सम्यग्दृष्टि को राग आता है, उसका ज्ञाता-दृष्टा है। कल कहा था ना ? '**ज्ञानी विषयसुख मांही, यह विपरीत संभव नांही**' - यह 'बनारसीदास' में है।

ज्ञानकला जिसके घट जागी, ते जगमांही सहज वैरागी,

'**ज्ञानकला जिसके रे घट जागी**' राग, विकल्प, पुण्य-पाप से मेरी चीज़ भिन्न है। शरीर की क्रिया आदि मेरे से भिन्न है। ऐसा अन्तर में सम्यग्ज्ञान चौथे गुणस्थान में हुआ। '**ज्ञानकला जिसके घट जागी, ते जगमांही सहज वैरागी;**' स्वाभाविक वैराग्य है, हठ से नहीं। किसी में सुख नहीं। स्त्री की लालच नहीं, अपनी इच्छा थोड़ी होती है वह अस्थिरता है, उसे उपसर्ग मानते हैं। सम्यग्ज्ञानी भोग की इच्छा होती है, उसे उपसर्ग मानते है। मिथ्यादृष्टि इच्छा को सुखरूप मानते हैं। इतना बड़ा फर्क है। आहा..हा... ! समझ में आया ? क्या ?

मुमुक्षु :- सम्यग्यदृष्टि उपसर्ग मानता है।

उत्तर :- उपसर्ग मानते हैं। सर्प देखते हैं, जैसे सर्प देखते हैं और भागते हैं, वैसे

सम्यग्ज्ञानी-धर्मी जीव अपने में आनन्द देखते हैं, राग में दु:ख देखते हैं। भागना चाहते हैं। सर्प... सर्प भयंकर सर्प देखकर जैसे भागता है, वैसे सम्यक् धर्मी जीव राग में दु:ख देखकर वहाँ से हटना चाहते हैं। अज्ञानी राग में सुख मानकर वहाँ पड़ा है। आहा..हा... !

मुमुक्षु :- ... क्यो शादी करते हैं ?

उत्तर :- भागने के लिये ही शादी करते हैं। शादी ही नहीं करता है, वह सब सूक्ष्म बातें हैं। भगवान को सम्यग्ज्ञान है, क्षायिक समकित है और (गृहस्थदशा में) ९६ हजार (स्त्री के साथ) शादी करते हैं, ऐसा दिखता हैं। अन्दर में नहीं, अन्दर में नहीं। यह राग दु:खदायक है, मेरी शांति मेरे पास है। मेरा शांति का अनुभव मेरे पास है। यह राग मुझे दु:खदायक है। राग टलता नहीं है इसलिये इतना संयोग दिखने में आता है। समझ में आया ? आहा..हा... !

पकड़ पकड़ में फर्क है। बिल्ली अपने बच्चे को मुख में पकड़ती है और बिल्ली चूहे को मुख में पकड़ती है। पकड़ती है या नहीं ? बिल्ली चूहे को पकडती है। चूहा कहते हैं न ? चूहे को ऐसे पकड़े और अपने बच्चे को सात दिन रखे फिर वहाँ से मुलामयता से (पकड़ती है)। पकड़ पकड़ में फर्क है। ऐसे सम्यग्ज्ञानी धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव भोग की वृत्ति उत्पन्न होती है परन्तु (उसकी) पकड़ नहीं, उसमें सुखबुद्धि नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

सम्यग्ज्ञान की इतनी महिमा है, परन्तु सम्यग्ज्ञान करने की परवाह नहीं। दूसरा करता है, ये करो, ये करो, उसमें जिंदगी चली गई। समझ में आया ? बाहर का आचरण करते, करते, करते जिंदगी गँवा दी। मेरी चीज़ क्या है ? राग से भिन्न क्या हूँ ? मेरे में आनन्द क्या है ? ऐसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान करने का उसे अवसर मिलता नहीं।

कहते हैं कि, कोटी उपाय बनाय, करोड़ उपाय करके भी तुम सम्यग्ज्ञान का उपाय करो, दूसरी बात छोड़ दो। कहा या नहीं उसमें ? देखो न, सुख की बात उसे हिन्दी में कहते हैं। (सातवीं गाथा में) कहा या नहीं ? '**कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनौ।**' क्या (कहते हैं) ? '**स्व-पर विवेक बखानौ;**' स्व और पर का ज्ञान कोटी उपाय करके भी वह एक करना है। जिसने सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन किया वह शिवमार्गी हो गया। उसे शिवपंथ हो गया, अन्तर में संवर पाया। और जिसने स्व-पर का भेदज्ञान नहीं किया और बाहर में दया, दान,

व्रत, भक्ति की क्रिया में रुक गया तो तो विकार, विभाव, शुभभाव है। शुभभाव में रुक गया और शुभभाव से भिन्न अपना आत्मा है ऐसा बोध नहीं किया तो उसे जन्म-मरण का अन्त कभी आता नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... !

भयंकर दावानल। आ..हा... ! प्रभु ! आत्मा तो शांति का सागर है। समझ में आया ? जैसे शीतल बर्फ की शिला होती है, शीतल बर्फ... बर्फ कहते हैं ना ? बर्फ नहीं होता है ? शीतल बडी शिला, पाँच-पाँच मन की। ऐसे आत्मा शांत वीतराग स्वरूप अकषायस्वरूप शांत अरूपी शांत शिला आत्मा है। उसमें तो शांति है। परन्तु पुण्य-पाप का भाव उत्पन्न होता है, (उसमें) अशांति है। आहा..हा... ! शुभ-अशुभभाव में जिंदगी बिता दे और उससे भिन्न अपने आत्मा का ज्ञान न करे तो उसे आत्मा का कल्याण कुछ होता नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

अरे.. ! दुनिया कोई साथ में नहीं आयेगी। फू... हो जायेगा। शरीर (छूट जायेगा)। चलो, कितना अभी तो रोज सुनते हैं, हार्ट फेईल ! भाई ! अभी किसी ने कहा कि, (कोई बहन का) हार्ट फेईल हो गया। 'मुंबई' में एक बहन बहुत प्रेमवाली है, बहुत प्रेमवाली है। बहुत रुचि, हार्ट फेईल हो गया। छोटी-छोटी उम्र में ४५ वर्ष, ४० वर्ष, ५० वर्ष। चलो, निकलो ! येदुनिया कोई साथ में आनेवाली नहीं। तेरी धूल, इज्जत यहाँ पड़ी रहेगी। भगवान ! क्यों ? भाई ! आहा..हा... !

कहते हैं, अरे... ! प्रभु ! तुझे अपने हित के लिये इतना अवसर नहीं मिलता ? विकार से भिन्न करने का तुझे अवसर नहीं मिलता ? भिन्न करने का अवसर नहीं मिलता तो तू कभी भिन्न होगा नहीं, तेरी मुक्ति कभी होगी नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... ! महापुराना दावानल दावह (जल रहा है)। आत्मा राग से भिन्न है - ऐसा सम्यग्ज्ञान करने से, आत्मा में आनन्द भासित होने से, उसे चाह की दाह शांत हो जाती है। ज्ञानी को चाह की दाह शांत हो जाती है। आहा..हा... ! यह गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि कीबात चलती है, हाँ ! स्त्री हो, साधन हो, भले हो, उसमें क्या है ? हमें कुछ नहीं है। आहा..हा... ! भैया ! बहुत अच्छी बात है। यह तो समझ में आये ऐसी बात है, बहुत सूक्ष्म नहीं है। क्यों सेठ ? यह तो समझ में आये ऐसी बात है, भैया !

आहा..हा... !

कहते हैं, विषय '**अरण्य-पुराने वन को जला रहा है,...**' भगवान तेरी शांति का बडा महावन अन्दर पड़ा है। शांति... शांति... शांति... शांति... स्वरूप पड़ा है अन्दर में, उसे विषय की चाह-दाह जला रही है, सम्यग्ज्ञान बिना। क्योंकि तुझे चाह में मीठास (लगती है)। सम्यग्ज्ञान राग से भिन्न हुआ ऐसे ज्ञान में अपनी शांति का भासन हुआ तो चाह के दाह को बुझानेवाली है। समझ में आया ? आहा..हा... ! अ..हो... ! मैं तो ज्ञानस्वरूप शांतिस्वरूप (हूँ) ऐसे राग से भिन्न पडा (तो) राग में मीठास चली गई। समझ में आया ? मीठास... मीठास अर्थात् मिथ्यादृष्टि में मज़ा मानता था, ज्ञानी को इच्छा में मज़ा की बात चली गई। अपने आत्मा में आनन्द है - ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ तो इच्छा की दाह शांत हो गयी। समझ में आया ? आ..हा.. ! शांति का दूसरा उपाय नहीं है। क्या कहते हैं ?

तुम हठ से इन्द्रिय दमन करना चाहो, थोड़ा आहार करके इन्द्रियदमन करें, वह सब उपाय नहीं - ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! थोड़ा आहार करना, ऐसा करना (तो) इन्द्रिय वश हो जायेगी, (तो) ऐसे नहीं होगी। अपना आत्मा राग से भिन्न (है), अपनी शांति का भासन हुए बिना राग की शांति नहीं होगी - ऐसा कहते हैं। आहा.. ! समझ में आया ? बहुत भरा है। थोडे में, गागर में सागर भर दिया है। अर्थ समझने की परवाह कितनी ? तोते की भाँति रटन करे। तोता रटन करता है न ? मुखाग्र कर लेते हैं ? तोते को सिखाते हैं न ? तोते को। देखो ! यहाँ बिल्ली आये तो यहाँ से भागना, बिल्ली आये तो यहाँ रहना नहीं, बिल्ली तुझे पकड़ेगी, मारेगी। तोता बोलते-बोलते बिल्ली आयी तो भी बोलता है बिल्ली यहाँ आयेगी, बिल्ली (मारेगी)। लेकिन आ गई, अब क्या करता है ? तोता रटन करते-करते बिल्ली आयी तो (भी बोलता है), बिल्ली आयेगी, तुझे पकड़ेगी, तुझे मारेगी। अरे.. ! आयी है, भाग तो सही। रटन क्या करता है ? वैसे विकार मेरा मानना दु:ख है, फलाना दु:ख है, ऐसे तोते की भाँति रटन करता है, परन्तु विकार से भिन्न मेरी चीज़ है, उसका भान करता नहीं। समझ में आया ? तोते की भाँति।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- इतना भी नहीं मालूम पड़ता। आहा..हा... !

यहाँ तो 'दौलतरामजी' ऐसा कहते हैं कि, स्व-पर का भेदज्ञान किये बिना पर की इच्छा का दाह तुझे शांत नहीं होगा, भगवान ! समझ में आया ? तेरे में आनन्द है। भगवान आनन्द सच्चिदानन्द मूर्ति है। 'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो' - आता है न 'बनारसीदास' में ? 'चेतनरूप चेतनरूप अनूप... अनूप' - उपमा बिना की मेरी चीज़ है। ''चेतनरूप अनूपअमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो' मैं तो सिद्ध समान शुद्ध आनन्द हूँ। रागादि मेरे में नहीं, ऐसा भान किये बिना उसे विषय की चाह, दाह और भ्रमणा का नाश कभी होता नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... ! कहा था न ?

ज्ञानकला ऊपजी मोहि,
कहौं गुन नाटक आगम केरौ
जासु प्रसाद सधै सिवमारग,
वेगि मिटै भववास बसेरौ।।११।।

सम्यग्ज्ञान से घट में बसना छूट जाता है। सम्यग्ज्ञान बिना भव का अभाव कभी होता नहीं।

मुमुक्षु :- धर्म तो होगा।

उत्तर :- धर्म-बर्म कहाँ से होगा ? धर्म हो तब तो भव का अभाव हो जाये। समझ में आया ? वह कहते हैं। थोड़ा सूक्ष्म है।

यहाँ तो कहते हैं, शुभभाव में भी धर्म नहीं है - ऐसा बताते हैं। शुभभाव में धर्म माननेवाला, विषय दाह की इच्छा सुख माननेवाला है। उसे आत्मा की शांति की परवाह है नहीं। विषयदाह की चाह मिटा सकता नहीं और पर से भिन्न कर सकता नहीं। आ..हा.. ! जिसे पर माने बाद में उसमें सुखबुद्धि रहे कहाँ से ? शरीरादि पर, स्त्री आदि पर, लक्ष्मी आदि पर (हैं)। मेरी चीज़ मेरे में भिन्न है - ऐसा माननेवाले को पर में सुखबुद्धि रहती नहीं। और पुण्य परिणाम होता है, पाप का परिणाम होता है परन्तु उससे मेरी चीज़ भिन्न है तो पुण्य-पापभाव में

भी सुखबुद्धि होती नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... !

'**ज्ञानरूपी वर्ष का समूह...**' क्या कहा ? आहा..हा... ! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप विकार से भिन्न (है), ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ तो इस सम्यग्ज्ञानमें से शांति का प्रवाह बहता है। जैसे अज्ञान में अशांति का प्रवाह उत्पन्न करता था, वैसे ज्ञान में - विकार और शरीर से भिन्न मेरा आत्मा (है), ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ। सम्यग्ज्ञान, हाँ ! तो सम्यग्ज्ञान में से शांति का प्रवाह आता है। अज्ञान में अशांति की उत्पत्ति, एकांत मिथ्यात्व और अशांति की उत्पत्ति थी।

'समयसार' शास्त्र में ऐसा लिखा है कि, ज्ञान का समकित, ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का चारित्र - ऐसे बोल 'समयसार' में आते हैं। चैतन्य भगवान आत्मा, पुण्य-पाप का विकार-विभाव से भिन्न (है), ऐसा आत्मा का ज्ञान, आत्मा का सम्यग्दर्शन और आत्मा का स्वरूप में चारित्र, उसका नाम चारित्र है। आत्मा में शुद्ध चैतन्य भगवान का अन्दर ज्ञान (होना) उसका नाम सम्यग्ज्ञान (है)। शुद्ध चैतन्य भगवान राग, पुण्य से भिन्न (है), उसकी प्रतीत (होनी), उसका नाम सम्यग्दर्शन (है) और स्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द में रमणता करनी, लीनता करनी उसका नाम चारित्र है। लोग तो बाह्य क्रिया को चारित्र मानते हैं। लो, चारित्र (हुआ), व्रत (ले लिये)। लेकिन सुन तो सही। सम्यग्दर्शन बिना व्रत कहाँ से आया ? और तेरा चारित्र आया कहाँ से ? समझ में आया ? बिना अंक के शून्य... शून्य (हैं)। एक को क्या कहते हैं ? ईकाई कहते हैं ? एक नहीं है और लाख शून्य हैं। लाख शून्य की क्या किंमत है ? ऐसे आत्मा पहले (जाने), राग का अंश भी तेरा कर्तव्य नहीं। समझ में आया ?

'**करै करम सोई करतारा, जो जानै सो जाननहारा,...**' देखो ! ज्ञान आया। '**जो जानै सौ जाननहारा, जानै सो कर्ता नहीं होई, जो करता नहि जानै सोई।**' (कर्ता-कर्म अधिकार, श्लोक ३३) ये 'समयसार नाटक' के शब्द हैं। '**करै करम सोई करतारा,**' अज्ञानी दया, दान का विकल्प उठाकर मेरा काम है, मेरा कर्तव्य है - ऐसा करनेवाला, भगवान कहे हैं कि, अज्ञान है। विकार मेरा कर्तव्य (है-ऐसा) माननेवाला कर्ता होता है, वह अज्ञानी है। '**करै करम सोई करतारा, जो जानै सौ जाननहारा,**' पुण्य-पाप के विकल्प से तेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा जाननेवाला राग को जानता है लेकिन राग को करता नहीं - ऐसा भान नहीं, सम्यग्दर्शन-

ज्ञान नहीं (और मानते हैं कि) व्रत और चारित्र, तप हो गया। कहाँ से हो गया ? समझ में आया ?

'करै करम सोई करतारा, जो जानै सो जाननहारा, जो कर्ता नहि जानै सोई' देह-क्रिया और मैं राग मेरा काम है, कर्तव्य है - ऐसा माननेवाला। **'करता नहि जानै सोई'** उसके पास ज्ञान नहीं, मैं ज्ञाता हूँ ऐसा उसे रहता नहीं। मैं ज्ञान हूँ, कर्ता नहीं। **'जो करता नहि जानै सोई, जे जानै सो करता नहीं होई।'** सम्यग्ज्ञानी-धर्मी जीव अपना विकार और शरीर से भिन्न जाननेवाला राग और देह की क्रिया का कर्ता होता नहीं। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! अनन्तकाल से वह स्व-पर भेदज्ञान नहीं समझा। शरीर को पर मानना, राग को विभाव मानना और कर्ता माना, उसे मेरा कार्य मानना, तब तो दो एक हो गये, भिन्न तो हुआ नहीं।

मुमुक्षु :- शरीर की क्रिया से धर्म होता है।

उत्तर :- शरीर की क्रिया से धर्म होता है, धूल में से होता है ? यह शरीर तो मिट्टी है, यह तो जड़ है, जड़ की पर्याय है, देखो ! राख है, धूल है। थोडे समय बाद राख होगी। स्मशान में इसकी राख होगी या दूसरे की होगी ? यह तो जड़ है। अन्दर में शुभ-अशुभभाव होता है, वह विभाव, विकार है। उससे भिन्न अपने ज्ञान का ज्ञान न हुआ तो राग और पर का कर्ता होता है तो पर और (स्व) दो को एक मानता है। आहा..हा... ! भाई ! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई ! अरे... ! उसने सत्य सुना नहीं, सत्य सुना नहीं, क्या है ? और ऐसे ही जिंदगी निकाल दी। वह तो गलुडिया... कुत्ते का बच्चा, उसे तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं ? पिल्ला। ऐसे जिंदगी निकाल दे, ऐसे (अज्ञानी) अपनी (जिंदगी) निकाल देता है। आहा... ! समझ में आया ? भगवान तो ऐसा कहते हैं, भैया ! करुणा करके कहते हैं, हाँ ! यहाँ भी 'दौलतरामजी', भगवान का कहा हुआ कहते हैं, हाँ ! उनके घर की बात नहीं।

कहते हैं, **'ज्ञानरूपी वर्षा का समूह शांत करता है।'** आहा..हा... ! अरे.. ! मैं तो शांत ज्ञान हूँ न ! ये विकार मेरे से पर है ना ! पर में मीठास, पर में मेरा मानना कहाँ रहा ? ज्ञानी ने अपने स्वभाव से विकार को पर माना तो पर में अपना मानना कहाँ रहा ? मानना रहा नहीं तो उसमें मीठास रही नहीं। मीठास है नहीं, मीठास है नहीं। ज्ञानी को राग में मीठास है नहीं,

अज्ञानी को अन्दर में मीठास हटती नहीं। ओ..हो..हो... ! एक श्लोक में तो बहुत भर दिया है, हाँ ! मौलिक रचना है। सादी हिन्दी भाषा में है। उसका भी विचार नहीं करते। 'छहढाला' बोलते रहो, रोज स्वाध्याय कर लो।

मुमुक्षु :- विचार के लिये समय चाहिए न !

उत्तर :- विचार करने का अवसर नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। अरे.. ! भगवान ! दूसरा अवसर तो बहुत मिलता है। अपने हित के लिये अवसर नहीं मिलता ! आहा.. ! अनन्तकाल में ऐसा मनुष्यदेह बड़ी मुश्किल से मिला। पहले कहा था न ? पहले कहा था न ? पहले कहा था। '**तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजे**' छठ्ठा श्लोक। '**संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे।**' '**आपो लख लीजे।**' आपो-आत्मा। विकार और पर से भिन्न (है)। छठ्ठे श्लोक में है। उसमें पाँचवा होगा। गुजराती में पाँच होगा, इसमें छठ्ठा होगा। '**तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास**...' तत्त्व अभ्यास (अर्थात्) विकार तत्त्व पर है, स्वभाव तत्त्व स्व है, जड़ पर है - ऐसा अभ्यास करीजै।

संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लखी लीजे,
यह मनुष्य पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी;
इह विध गये न मिले सुमणि ज्यौं उदधि समानी।

समुद्र में एक बड़ा मणि गिर गया, (अब) नहीं मिलेगा। ऐसा मनुष्यपना मिला, सुकुल मिला, जिनवाणी मिली, लेकिन यदि भेदज्ञान नहीं किया तो जायेगा चौरासी के अवतार में। समझ में आया ? आहा..हा... ! सादी भाषा में लिया है। उसका भावार्थ लो।

भावार्थ :- 'भूत, वर्तमान और भविष्य-तीनों काल में जो जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, होंगे और (वर्तमान में वेदेहक्षेत्र में) हो रहे हैं;...' वर्तमान में विदेहक्षेत्र में मोक्ष हो रहे हैं। '**वह इस सम्यग्ज्ञान का ही प्रभाव है।**' सम्यग्ज्ञान का प्रभाव ज्ञान अर्थात् वाणी नहीं, शास्त्रभाषा नहीं। राग और शरीर से भिन्न अपना ज्ञान (होना), उसका नाम ज्ञान है। यह सम्यग्ज्ञान का प्रभाव (है)। '**ऐसा पूर्वाचार्यो ने कहा है।**' सन्तों 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज

आदि दिगम्बर संत हुए, महान संत पूर्व (में हुए), भगवान की आज्ञा के अनुसार सर्व आचार्यो ने ऐसा कहा है।

'**जिसप्रकार दावानल (वन में लगी हुई अग्नि) वहाँ की समस्त वस्तुओं को भस्म कर देती है,...**' जला दे न ? अग्नि किसे न जलाये ? सबको जला देती है। '**उसी प्रकार पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी विषयों की इच्छा संसारी जीवों को जलाती है...**' ओ..हो..हो...! शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में मीठास की इच्छा, मिथ्यात्व की इच्छा जलाती है। मूढ प्रसन्नता मानता है। हर्ष सन्निपात होता है कि नहीं ? क्या कहते हैं ? सन्निपात एक रोग होता है। सन्निपात में रोग होता है कि नहीं ? हँसता है ? हँसता है तो क्या वह सुखी है ? सन्निपात होता है न ? वात, पित्त और कफ। तीन के रोगमें से सन्निपात (होता है)। वहहँसता है तो सुख है ? सुख है ? मूढ को भान नहीं। आसपास लोग होते हैं वे मान लेते हैं कि अब दो घडी, चार घडी में समाप्त हो गया, हो जायेगा। हँसता है तो क्या सुखी है ? हर्ष सन्निपात। ऐसा अज्ञानी को हर्ष सन्निपात है। पुण्य-पाप के फल में और पुण्य में (सुख मानता है) देखो ! आगे कहेंगे। पर में मज़ा है (ऐसा) माननेवाला अज्ञानी सुख मानता है। (सुख) है नहीं। मिथ्याभाव से मान लेता है। कौन ना कहे ? हमें तो मज़ा है। धूल में मज़ा है ?

सुनने की चीज़ तो यह है। अनन्त ज्ञानी पहले कहते आये हैं, देखो ! है कि नहीं ? अपनी चीज़ है ? उसमें से तो निकालते हैं। पूर्वाचार्यो, मुनिनाथ, आचार्यो, मुनिनाथ लिया, उसमें तीर्थंकर लिये। मुनि के नाथ आचार्यो, 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज भगवान जैसा पंचमकाल में तीर्थंकर जैसा काम किया। महा दिगम्बर संत, भगवान के पास गये थे। 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' दो हजार वर्ष पहले संवत ४९ में भरतक्षेत्र में हुए। दिगम्बर मुनि महा समर्थ, आठ दिन भगवान के पास गये थे। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा बिराजते हैं उनके पास गये थे। आठ दिन रहे थे। कल लिखाया है। कहाँ गये ? एक भाई थे न ? वह लिखा है न ? 'पोन्नुर हिल'।